पाठ्यक्रम - ३

३.अ जिन-धर्म तीर्थ प्रवर्तक-तीर्थङ्कर

तीर्थङ्कर

तीर्थङ्कर का स्वरूप -

धर्म का प्रवर्तन कराने वाले महापुरुष तीर्थङ्कर कहलाते हैं। तीर्थङ्करों के गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान और निर्वाण ये पाँच कल्याणक होते हैं। इन्द्रों के द्वारा किए जाने वाले महोत्सव विशेष को कल्याणक कहते हैं।

तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध -

तीर्थङ्कर बनने के संस्कार सोलह कारण रूप अत्यन्त विशुद्ध भावनाओं द्वारा उत्पन्न होते हैं, उसे तीर्थङ्कर प्रकृति का बंधना कहते हैं। ऐसे परिणाम केवल मनुष्य भव में और वहाँ भी किसी तीर्थङ्कर व केवली के पादमूल में ही होने से सम्भव हैं।

चौबीस तीर्थङ्कर -

चौबीस तीर्थङ्करों के क्रम, नाम, चिह्न निम्नलिखित हैं :-

१.	ऋषभनाथ जी	-	बैल
२.	अजितनाथ जी	-	हाथी
३.	संभवनाथ जी	-	घोड़ा
४.	अभिनन्दन नाथ जी	-	बंदर
५.	सुमति नाथ जी	-	चकवा
६.	पद्म प्रभ जी	-	लाल कमल
७.	सुपार्श्व नाथ जी	-	साथियाँ
८.	चन्द्रप्रभ जी	-	चन्द्रमा
९.	पुष्पदंत जी	-	मगर
१०.	शीतल नाथ जी	-	कल्पवृक्ष
११.	श्रेयांस नाथ जी	-	गेंडा
१२.	वासुपूज्य जी	-	भैंसा
१३.	विमलनाथ जी	-	सूकर
१४.	अनन्तनाथ जी	-	सेही
१५.	धर्मनाथ जी	-	वज्रदण्ड
१६.	शान्तिनाथ जी	-	हिरण
१७.	कुन्थु नाथ जी	-	बकरा
१८.	अरनाथ जी	-	मत्स्य
१९.	मल्लिनाथ जी	-	कलश
२०.	मुनिसुव्रत जी	-	कछुवा
२०.	नमिनाथ जी	-	नील कमल
२२.	नेमिनाथ जी	-	शंख

पञ्च परमेष्ठी स्तवन

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधु सुख दाता,
परमेष्ठी पंच सुखदाता।।
इन्द्र, नरेन्द्र यक्ष सुर किन्नर पंडित बुधजन सारे,
भवतम भंजन शीश नमावत रक्षक तुम ही हमारे,
जब शुभ मन से ध्यावे, तब शुभ आशीष पावे,
हे सद्बुद्धि प्रदाता।।
भव दुःख बाधा हरो हमारी तुम्हें नमावत माथा,
जय हे जय हे जय हे जय जय जय जय हे,
परमेष्ठी पंच सुखदाता।।
चारों गति में भ्रमत फिरे हैं कष्ट अनेक उठाए,
ज्ञान नयन जब खुले हमारे तब तुम दर्शन पाए,
सुख की आश लगाए, हम सब तुम ढिग आए,
जहाँ मिले सुखसाता।।
नाथ तुम्हारे दर्शन से तो मुक्ति पथ मिल जाता,
जय हे जय हे जय हे जय जय जय जय हे,
परमेष्ठी पंच सुखदाता।।
अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधु सुख दाता,
परमेष्ठी पंच सुखदाता।।

- स्वस्थ, मस्त और प्रसन्न रहना हो तो वास्तविकता को स्वीकार करके ही जीवन बिताना चाहिए।
- प्रत्येक अरुचिकर प्रसंग को नजर अंदाज करके झुकते जाओ और झुक-झुक कर सबको संभालते रहो।

सहिष्णुता ही नाश्ता, मोक्षमार्ग का, सदा साथ हो ।

अपना भाग्य, अपने साथ पर की, अपेक्षा क्यों ?

२३. पार्श्वनाथ जी - सर्प २४. महावीर जी - सिंह

- श्री वासुपूज्य, श्री मल्लिनाथ, श्री नेमिनाथ, श्री पार्श्वनाथ और श्री महावीर ये पाँच तीर्थङ्कर बाल ब्रह्मचारी थे अर्थात् इन्होनें विवाह नहीं कराया एवं राज-पाट भोगे बिना कुमार अवस्था में ही दीक्षा धारण की।
- एक से अधिक नाम वाले तीन तीर्थङ्कर हैं :-
  श्री ऋषभ नाथ जी - आदिनाथ जी श्री पुष्पदन्त जी - सुविधिनाथ जी
  श्री महावीर जी - वीर, अतिवीर, वर्द्धमान, सन्मति
- आदिनाथ भगवान - कैलाश पर्वत से, वासुपूज्य भगवान - चंपापुर से, नेमिनाथ भगवान - गिरनार पर्वत से, महावीर भगवान - पावापुर से व शेष बीस तीर्थङ्कर श्री सम्मेदशिखर जी से मोक्ष गए।
- शांतिनाथ जी, कुन्थुनाथ जी व अरनाथ जी एक साथ तीन पद तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती और कामदेव पद के धारी थे।
- तीर्थङ्करों के पांच वर्ण प्रसिद्ध हैं - जिसमें चन्द्रप्रभ व पुष्पदन्त जी का गौर वर्ण, मुनिसुव्रत व नेमिनाथ जी का साँवला वर्ण, सुपार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ जी का हरा वर्ण, पद्मप्रभ एवं वासुपूज्य जी का लाल वर्ण तथा शेष-सोलह तीर्थङ्करों का स्वर्ण वर्ण था।
- मल, मूत्र आदि अशुद्ध पदार्थ तीर्थङ्करों के शरीर में नहीं होते। इनके शरीर के खून का रंग दूध जैसा सफेद होता है। जिस प्रकार पुत्र के प्रति वात्सल्य भाव होने से माता के द्वारा किया हुआ भोजन का कुछ अंश दूध के रूप में परिणत हो जाता है उसी प्रकार तीर्थङ्कर का तीनों लोकों के प्राणियों के प्रति वात्सल्य भाव होने से उनके खून का रंग दूध के समान श्वेत होता है।
- तीर्थङ्करों के दाढ़ी-मूँछ नहीं होती। परन्तु सिर पर बाल होते हैं।
- तीर्थङ्कर स्वयं दीक्षित होते हैं, दीक्षा लेते ही उन्हें मन: पर्यय ज्ञान प्रकट हो जाता है।
- सभी तीर्थङ्कर चतुर्थ काल में ही जन्म लेते हैं एवं उसी काल में निर्वाण को प्राप्त होते हैं किन्तु हुण्डा अवसर्पिणी काल दोष से आदिनाथ भगवान तृतीय काल में ही जन्म लेकर निर्वाण को प्राप्त हुए अर्थात् मोक्ष गए।
- वृषभनाथ, वासुपूज्य और नेमिनाथ (१,१२, २२) तो पद्मासन एवं शेष सभी तीर्थङ्कर कायोत्सर्गासन (खड्गासन) से मोक्ष पधारे थे, किन्तु समवसरण में सभी तीर्थङ्कर पद्मासन से ही विराजमान होते हैं।
- जीवन भर (दीक्षा के पूर्व) देवों के द्वारा दिया गया ही भोजन एवं वस्त्राभूषण ग्रहण करते हैं। तीर्थङ्कर स्वयं दीक्षा लेते हैं।
- तीर्थङ्कर मात्र सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार करते हैं। अत: ''नम: सिद्धेभ्य:'' बोलते हैं।
- जब सौधर्म इन्द्र तीर्थङ्कर बालक का पाण्डुकशिला पर जन्माभिषेक करता है। उस समय तीर्थङ्कर के दाहिने पैर के अँगूठे पर जो चिह्न दिखता है, इन्द्र वही चिह्न तीर्थङ्कर का निश्चित कर देता है।

व्रत उपवास की जरूरत क्यों?

जैसे जो गाय चरने के लिए सीधी जंगल जाती है और सीधी अपने घर वापस आ जाती है तो उसे खोड़ा लटकाने की जरूरत नहीं होती। पर जो गाय चंचल होती है इधर-उधर मुँह मारती है तो उसे खोड़ा लटकाने की जरूरत होती है।

ठीक इसी प्रकार से हमारी उपयोग रूपी गाय बहुत चंचल है वह अपने ज्ञान दर्शन के रास्ते से सीधी आती-जाती नहीं, रागद्वेष कर इधर-उधर मुँह मारती है इसलिए हमें व्रत नियम, जप, तप, तीर्थवंदना, स्वाध्याय, अणुव्रत, महाव्रत आदि की आवश्यकता होती है।

कभी तो ये बाबा

कभी तो ये बाबा माँझी बन जाता है।
कभी तो ये बाबा साथी बन जाता है।।
अंगुली पकड़ मेरी चलना सिखाता है।
कर्मों से छुड़ा करके भगवन बनाता है।।
तो बोलो न ... कभी तो...।।
ठोकर लगी मुझको पत्थर नुकीला था।
पर चोट नहीं आई बाबा नें सम्हाला था।।
सुनते है तेरी रहमत दिनरात बरसती है।
एक बूँद जो मिल जाए किस्मत ही बदलती है।।
तो बोलो न ... कभी तो...।।
जो ठुकरा दिया तुमने हम किससे बोलेंगे।
दर तेरे खड़े होकर छुप-छुप के रो लेंगे।।
गुरुदेव की महिमा को सब मिलकर गाएँगें।
इस स्वर्ण सुअवसर को अब सफल बनाएँगे।।
तो बोलो न ... कभी तो...।।

३.ब जिनवर मुख से निकली वाणी- जिनागम

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा जो सन्मार्ग का, जीवादि तत्त्वों का उपदेश दिया जाता है वह जिनागम कहा जाता है। इसे जिन की वाणी अर्थात् जिनवाणी भी कहते हैं।

जिन हो जाने पर प्रत्येक जीव सर्वज्ञ और वीतरागी हो जाते हैं उन्हें तीन लोक में स्थित सभी चराचर, चेतन-अचेतन पदार्थों का ज्ञान हो जाता है और उनके अन्दर से राग और द्वेष का पूर्ण अभाव हो जाता है। उस अवस्था में जो उपदेश दिया जाता है, वह प्रामाणिक होता है, अत: जिनेन्द्र भगवान के वचन सर्वथा सत्य एवं ग्रहण करने योग्य हैं।

पूर्वकाल में आचार्यों, मुनियों एवं श्रावकों की बुद्धि तीक्ष्ण थी, स्मरण शक्ति भी तेज थी। उन्हें एक, दो बार गुरु मुख से सुना हुआ विषय याद हो जाता था, अत: पूर्व में जिनवाणी लिपिबद्ध नहीं थी। किन्तु कालक्रम से बुद्धि का ह्रास होने से तथा जब स्मरण शक्ति कम होने लगी तब सर्वप्रथम आचार्य पुष्पदन्त-भूतबली महाराज ने षट्खण्डागम नामक सिद्धान्त ग्रंथ को ताड़-पत्र पर उत्कीर्ण किया/लिपिबद्ध किया। यही क्रम आगे भी चलता रहा अनेक आचार्य मुनियों ने गुरु परम्परा से प्राप्त जिन-वचनों को अपनी बुद्धि, शक्ति और शैली के अनुसार अनेक ग्रंथों में लिपिबद्ध किया।

जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित आगम को विषय वस्तु के भेद से समझाने हेतु चार भागों में (अनुयोगों में) विभाजित किया गया है, वे भेद प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग हैं।

- प्रथमानुयोग -

तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती आदि तिरेसठ शलाका-पुरुषों के चारित्र निरूपक अनुयोग को प्रथमानुयोग कहते हैं।

आचार्य समन्तभद्र जी ने इसे बोधि और समाधि का निधान कहा है। प्रथमानुयोग पढ़ने से प्रशम भाव आता है, जब हमारे मन में उत्तेजना आती है, प्रतिकूलता में मन जब उद्वेलित होने लगता है तब हम पूर्वजों की बात समझकर/स्मरण कर समता धारण करते हैं। ''अरे मैं किस बात पर दु:खी होता हूँ रामचन्द्र जी, सीता जी के ऊपर कितने कष्ट आए, फिर भी उनकी आँखें लाल नहीं हुई फिर मैं क्यों क्रोध करूँ'' ऐसा प्रशम भाव आता है।

प्रथमानुयोग के कुछ ग्रंथ- पद्म पुराण, आदि पुराण, उत्तर पुराण, हरिवंश पुराण, पाण्डव पुराण, श्रेणिक चरित्र, प्रद्युम्न चरित्र, धन्यकुमार चरित्र आदि।

- करणानुयोग -

लोक-अलोक का विभाग, युग-परिवर्तन और चतुर्गति के जीवों की स्थिति के निरूपक अनुयोग को करणानुयोग कहते हैं। इस अनुयोग में अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक का सविस्तार वर्णन है। इसके विषय परोक्ष (इंद्रिय अगम्य) होने से आस्था के विषय हैं तिलोय पण्णति, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीप पण्णति आदि ग्रंथ करणानुयोग के ग्रंथ हैं।

- चरणानुयोग -

गृहस्थ और मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के कारणों का वर्णन जिन ग्रंथों में पाया जाए उन्हें चरणानुयोग जानना चाहिए।

गृहस्थों का सामान्य आचार, भक्ष्याभक्ष्य विवेक, अणुव्रत, ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन, मुनियों के अट्ठाईस मूलगुणों का वर्णन, सल्लेखना का स्वरूप, विधि आदि का वर्णन इस अनुयोग का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है।

चरणानुयोग के कुछ ग्रंथ - रत्नकरण्डक श्रावकाचार, सागारधर्मामृत अनगार धर्मामृत, मूलाचार, भगवती आराधना, श्रावक धर्म प्रदीप, मूलाचार प्रदीप आदि।

- द्रव्यानुयोग -

जिस अनुयोग में पंचास्तिकाय, जीवादि छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ आदि का विस्तार से वर्णन हो उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं। समयसार, नियमसार, द्रव्यसंग्रह, समाधि-शतक, इष्टोपदेश, तत्त्वार्थ सूत्र, आलाप पद्धति आदि द्रव्यानुयोग के ग्रंथ हैं। अन्य

प्रकार से द्रव्यानुयोग को निम्न रुप में व्यवस्थित किया गया है:-

द्रव्यानुयोग

आगम	अध्यात्म
सिद्धान्त-षट्खण्डागमादि	भावना-कार्तिकेयानुप्रेक्षादि
न्याय -अष्टसहस्त्री आदि	ध्यान-ज्ञानार्णव आदि

चेतो- चेतन

चेतो चेतन निज में आओ, अंतरआत्मा बुला रही है।
जग में अपना कोई नहीं है, तू तो ज्ञानानंदमयी है
एक बार अपने में आजा, अपनी खबर क्यों भुला दयी है।।१।।
तन धन जब यह कुछ नहीं तेरा, मोह में पड़कर कहता है मेरा,
जिनवाणी को उर में धर ले, समता में तुझे सुला रही है।।२।।
निश्चय से तू सिद्ध प्रभु सम, कर्मोदय से धारे है तन,
स्याद्वाद के इस झूले में, जिनवाणी माँ झुला रही है।।३।।
मोह राग और द्वेष को छोड़ो, निज स्वभाव से नाता जोड़ो,
ब्रह्मानंद जल्दी तुम चेतो, मृत्यु पंखा डुला रही है।।४।।

जिनवाणी पढ़ने-सुनने से निम्नलिखित लाभ हैं -

1. जिनवाणी अमृत के समान है, जिससे संसारी प्राणी का दु:ख रूपी ताप शांत हो जाता है, सहनशीलता का विकास होता है।
2. राग-द्वेष रुप कषाय भावों में कमी आती है, पूर्व में बंधे हुए अशुभ कर्मो की निर्जरा होती है।
3. अज्ञान का नाश एवं आनन्द (सुख) की उत्पत्ति होती हैं।
4. निरवद्य स्वाध्याय करते समय पाप का बंध रुक जाता हैं।
5. सच्चे देव-शास्त्र-गुरु पर आस्था मजबूत होती हैं।
6. देवों के द्वारा पूजातिशय को प्राप्त होते हैं।
7. न समझ आने पर भी श्रद्धा पूर्वक सुना हुआ जिनवचन भविष्य में केवल ज्ञान की उत्पत्ति में कारण बनता हैं।

प्रतिकूलता का प्रतिकार नहीं करना पुरुषार्थ हीनता नहीं अपितु पुरुष का परम-पुरुषार्थ है मोक्ष की ओर गति-प्रगति का कारण।

पश्चात्ताप

स्कूल के वार्षिक समारोह में रामू को पढ़ाई, खेलकूद व अन्य गतिविधियों में श्रेष्ठ छात्र का पुरस्कार दिया जा रहा था। पुरस्कार लेने के बाद जैसे ही वह मंच से नीचे उतर कर माँ के पास पहुँचा तो उसकी नजर अपने दोस्तों पर पड़ी जो उसे नफरत भरी नजरों से देख रहे थे। उसमें से कुछ दोस्त उसकी माँ पर हँस भी रहे थे। क्योंकि वह एक आँख से वंचित थी।

इस घटना के बाद से रामू के मन में भी माँ के प्रति हीन भावना पैदा हो गई। उसे लगने लगा कि हर क्षेत्र में आगे रहने के बावजूद भी लोग उसे तिरस्कार की भावना से देखते हैं। मन ही मन इसके लिए वह माँ को दोषी मानने लगा। परिणाम स्वरूप धीरे-धीरे उसके मन में माँ के प्रति एक दूरी पनप गई। समय बीतता गया और माँ से उसकी दूरियाँ बढ़ती रहीं। बड़े होने पर राम एक सफल व्यवसायी बन गया। उसके पास सुखी परिवार, धन, सम्पदा, सब कुछ था। गाँव तो वह कभी का छोड़ चुका था। साथ ही माँ से दूर रहने के कारण वह खुद को बचपन की उस हीन भावना से मुक्त महसूस कर रहा था।

समय गुजरता गया। एक दिन उसे गाँव के स्कूल का पत्र मिला जहाँ सभी पुराने विद्यार्थियों को एक समारोह में बुलाया गया था। स्कूल समारोह से लौटने के बाद जिज्ञासावश रामू अपने पुराने घर पहुँचा, जहाँ उसका बचपन बीता था। मकान वीरान पड़ा था। अब तक माँ की मृत्यु हो चुकी थी। घर के भीतर पुरानी चीजें टटोलते हुए अचानक उसका हाथ एक पुराने तुड़े-मुड़े कागज के टुकड़े पर पड़ा। उसने उसे गौर से देखा तो वे माँ के अक्षर थे। लिखा था- ''प्रिय बेटे रामू, मेरी एक आँख हमेशा तुम्हारी शर्मिंदगी का कारण बनी। मुझे इसका दु:ख रहा लेकिन कुछ चीजों पर किसी का नियंत्रण नहीं होता। बेटे! जब तुम बहुत छोटे थे तब एक दुर्घटना में तुम्हारी एक आँख चली गई थी। मैं तुम्हें एक आँख के साथ बड़ा होते नहीं देख सकती थी। इसलिए मैंने तुम्हें अपनी एक आँख दान कर दी थी। यह जानकर तुम परेशान मत होना, मैं जानती हूँ कि तुम आज भी मुझसे बेहद प्यार करते हो।'' यह पढ़कर रामू अवाक् खड़ा रह गया। अचानक उसे अपने जीवन में सब कुछ निरर्थक प्रतीत हो रहा था। उसकी आँखें तो खुलीं लेकिन माँ की आँखें बन्द होने के बाद। सच है बिना विचारे जो करे सो पीछे पछताए।

३.स जैन कला तीर्थ - देवगढ़

उत्तरप्रदेश के ललितपुर जिले में स्थित देवगढ़ भारतीय संस्कृति एवं कला का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल है। लगभग ३०० फीट ऊँची पहाड़ी पर स्थित किले और उसके भीतर निर्मित जैन देवालयों एवं देवमूर्तियों की दृष्टि से देवगढ़ की मान्यता संपूर्ण भारत में एक अद्वितीय कला स्थल के रूप में है।

देवगढ़ में मुख्यत: पाँचवी-छठी शताब्दी से १६ वीं-१७वीं शताब्दी के बीच की भारतीय कला का अजस्र प्रवाह देखा जा सकता है। वस्तुत: देवगढ़ की जैन कला 'कला कला के लिए है' इस अवधारणा से आगे बढ़कर 'कला जीवन के लिए है' के भाव उजागर करती है॥ देवगढ़ में ४१ जैन मंदिर तथा असंख्य मूर्तियाँ अवस्थित है। इन मन्दिरों तथा मूर्तियों की प्रचुर संख्या, निर्माण की विभिन्न शैलियाँ, शिल्प के अनूठे प्रयोग, कला वैविध्य तथा इनके निर्माण की लम्बी कालावधि के कारण देवगढ़ जैन मूर्तिकला तथा स्थापत्य का महत्वपूर्ण केन्द्र है।

देवगढ़ की जैन कला के विषय में अध्ययन के कुछ महत्वपूर्ण प्रयत्न भी हुए हैं, जिनमें जर्मनी के विद्वान डॉ० क्लाज ब्रुन की पुस्तक '' दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़'' तथा डॉ भागचन्द्र भागेन्दु के *शोध-ग्रन्थ* देवगढ़ की जैन कला : एक सांस्कृतिक अध्ययन उल्लेखनीय है।

देवगढ़ स्थित विपुल पुरासम्पदा, मन्दिर, मूर्तियॉ, बेतवा नदी, घाटियाँ एवं वन्य जन्तु विहार आदि मिलकर देवगढ़ को न केवल तीर्थ स्थल बल्कि एक सुरम्य पर्यटन स्थल भी बनाते हैं।

राजाबाई क्लॉक टावर

राजाबाई क्लॉक टावर मुम्बई विश्वविद्यालय परिसर में स्थित एक घड़ी टावर है । इस टावर की ऊँचाई २८० फुट है। इसका निर्माण २ लाख रुपए की लागत से नवम्बर १८७८ में किया गया था। यह टावर प्रेमचन्द रायचन्द ने अपनी मॉ राजाबाई के नाम से उन्ही के लिए बनवाया था। जिससे वे बिना किसी की मदद से अपने कार्य समय पर सम्पन्न कर सकें।
राजाबाई दृष्टिहीन थीं । जैन धर्म की कट्टर अनुयायी थीं । इस टावर की घंटी से उन्हें समय का पता चल जाता था, जिससे वे रात्रि होने के ४८ मिनट पूर्व ही भोजन किया करती थी ।

- **पैसा कमाने के लिए पहले शरीर को घिसना फिर शरीर स्वस्थ रखने के लिए धन लगाना अज्ञानता ही है ।**

बारह भावना

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार॥१॥
दल बल देवी-देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियां जीव को, कोऊ न राखन हार॥२॥
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कबहूँ ना सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥३॥
आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यो कबहूँ इस जीव का, साथी सगा न कोय॥४॥
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय॥५॥
दिपै चाम-चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह॥६॥
मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्म चोर चहुं ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं॥७॥
सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमैं।
तब कुछ बनहिं उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं॥८॥
ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे पूरब चोर॥९॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार॥१०॥
चौरह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान॥११॥
धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान॥१२॥
जांचे सुर-तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जांचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन॥१३॥

३.द श्रीपञ्चमहागुरु भक्ति (प्राकृत)

श्रीपञ्चमहागुरु भक्ति (प्राकृत)

मणुय-णाइंद सुर धरिय छत्तत्तया,
पंच-कल्लाण सोक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं,
ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥1 ॥

अर्थ : (मणुय-णाइंद-सुर-धरिय-छत्तत्तया) मनुजेन्द्र/चक्रवर्ती, नागेन्द्र/धरणेन्द्र और सुरेन्द्रों द्वारा जिन पर तीन छत्र लगाये गये हैं तथा **(पंचकल्लाण-सोक्खावली-पत्तया)** पंचकल्याणकों के सुख समूह को प्राप्त **(ते जिणा)** वे जिनवर अरहंत भगवान् **(अम्हं)** हमारे लिये **(वरं मंगलं)** श्रेष्ठ मंगलमय **(अणंतं दंसणं णाण बलं)** अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतबल और **(झाणं)** उत्कृष्ट शुक्लध्यान को **(दिंतु)** देवें।

जेहिं झाणग्गि बाणेहिं अइ-दिड्ढयं,
जम्म जर मरण णयरत्तयं दड्ढयं।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं,
ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ॥2 ॥

अर्थ : (जेहिं) जिन्होंने **(झाणग्गि-बाणेहिं)** ध्यानरूपी अग्निबाणों द्वारा **(अइ-दिड्ढयं)** अत्यन्त दृढ़ **(जम्म-जर-मरण-णयरत्तयं)** जन्म-जरा/बुढ़ापा और मरणरूपी तीनों नगरों को **(दड्ढयं)** जलाया **(जेहिं)** जिन्होंने **(सासयं सिवं)** शाश्वत शिव **(ठाणयं पत्तं)** स्थान को प्राप्त किया **(ते सिद्धा)** वे सिद्ध भगवान् **(महं)** मुझे **(वरं णाणयं)** उत्तम ज्ञान को **(दिंतु)** देवें।

पंच-हाचार पंचग्गि संसाहया,
वारसंगाइ सुअ-जलहि अवगाहया।
मोक्खलच्छी महंती महंते सया,
सूरिणो दिंतु मोक्खं गया-संगया ॥3 ॥

अर्थ : (पंचहाचार-पंचग्गि-संसाहया) जो पंचाचाररूपी पंचाग्नि तपों के सम्यक् साधक **(वारसंगाई-सुअ-जलहि-अवगाहया)** द्वादशांग आदि श्रुतरूपी सागर में अवगाहन करने वाले तथा **(गयासं मोक्खं गया)** सम्पूर्ण आशाओं परिग्रहों से रहित मोक्ष को प्राप्त **(ते सूरिणों)** वे आचार्य **(महं)** मुझे **(सया)** सदा **(महंती मोक्ख-लच्छी)** महान् मोक्षलक्ष्मी को **(दिंतु)** देवें।

घोर संसार भीमाडवी - काणणे,
तिक्ख वियराल णह पाव-पंचाणणे।
णट्ठ मग्गाण जीवाण पहदेसिया,
वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥4 ॥

अर्थ : (तिक्ख-वियराल-णह-पाव-पंचाणणे) तीक्ष्ण विकराल नख सहित पैर वाले पापरूपी सिंहों से व्याप्त **(घोर-संसार-भीमाडवी-काणणे)** घोर संसाररूपी भयंकर अटवी, बीहड़ वन में **(णट्ठ-मग्गाण)** मार्ग भूले हुए **(जीवाण)** जीवों को जो **(पह-देसिया)** मार्ग के उपदेशक/मार्गदर्शक हैं **(ते उवज्झाय)** उन उपाध्याय परमेष्ठी की **(अम्हे)** हम **(सया)** सदा **(वंदिमो)** वंदना करते हैं।

उग्ग तव चरणकरणेहिं झीणं गया,
धम्म वर झाण सुक्केक्क झाणं गया।
णिब्भरं तव सिरी ए समा लिंगया,
साहवो ते महं मोक्ख पह मग्गया ॥5 ॥

अर्थ : (उग्ग-तव-चरण-करणेहिं) उग्र तपश्चरण करने से **(झीणंगया)** क्षीणता को प्राप्त शरीर वाले **(धम्मवरझाणसुक्केक्क-झाणंगया)** धर्मरूप उत्तमध्यान तथा शुक्लरूप मुख्य ध्यान को प्राप्त **(तव-सिरीए)** तपरूपी लक्ष्मी से **(णिब्भरं समालिंगया)** अत्यन्त आलिंगित **(ते साहवो)** वे साधुगण **(महं)** मेरे लिए **(मोक्ख-पह-मग्गया)** मोक्षमार्ग के मार्गदर्शक/देने वाले हों।

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए,
गुरुय संसार घणवेल्लि सो छिंदए।
लहइ सो सिद्धिसोक्खाइं वरमाणणं,
कुणइकम्मिंधणं पुंज पज्जालणं ॥6 ॥

अर्थ : (एण थोत्तेण) इस स्तोत्र के द्वारा **(जो)** जो **(पंच-गुरु)** पञ्च-गुरुओं/पञ्च-परमेष्ठियों की **(वंदए)** वंदना करता है **(सो)** वह **(गुरुय-संसार-घण-वेल्लि)** गुरु/भारी/अनन्त संसाररूपी सघन बेल को **(छिंदए)** काट डालता है और **(सो)** वह **(वरमाणणं)** उत्तम जनों के द्वारा मान्य **(सिद्धि-सोक्खाइं)** मोक्ष के सुखों को **(लहइ)** प्राप्त होता है तथा **(कम्मिंधणं पुंज-पज्जालणं)** कर्मरूपी ईंधन के समूह को भस्म **(कुणइ)** करता है।

अरुहा सिद्धाइरिया,
उवज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
एयाण णमोयारा,
भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥7 ॥

अर्थ : (अरुहा) जन्म से रहित अरहंत **(सिद्धाइरिया)** सिद्ध, आचार्य **(उवज्झाया)** उपाध्याय और **(साहु)** साधु ये **(पंच-परमेट्ठी)** पाँच परमेष्ठी हैं **(एयाण)** इनके **(णमोयारा)** नमस्कार **(मम)** मुझे **(भवे भवे)** भव-भव में **(सुहं)** सुख को **(दिंतु)** देवें।

- **दुःख समय से पहले मिले तो व्यक्ति शायद मजबूत बनके बाहर निकलता है लेकिन सुख समय से पहले मिले तो शायद वही व्यक्ति शैतान बनकर बाहर आता है ।**

गोमटेश अष्टक

नीलकमल के दल-सम जिन के युगल-सुलोचन विकसित हैं,
शशि सम मनहर सुख कर जिनका मुख-मण्डल मृदु प्रमुदित है।
चम्पक की छवि शोभा जिनकी नम्र नासिका ने जीती,
गोमटेश जिन-पाद-पद्म की पराग नित मम मति पीती।।१।।
गोल-गोल दो कपोल जिनके उजल सलिल सम छवि धारे,
ऐरावतगज की सूण्डा सम बाहुदण्ड उज्ज्वल-प्यारे।
कन्धों पर आ, कर्ण-पाश वे नर्तन करते नन्दन है,
निरालम्ब वे नभ सम शुचि मम, गोमटेश को वन्दन है।।२।।
दर्शनीय तव मध्य भाग है गिरि-सम निश्चल अचल रहा,
दिव्य शंख भी आप कण्ठ से हार गया वह विफल रहा।
उन्नत विस्तृत हिमगिरि-सम है, स्कन्ध आपका विलस रहा,
गोमटेश प्रभु तभी सदा मम तुम पद में मन निवस रहा।।३।।
विंध्याचल पर चढ़कर खरतर तप में तत्पर हो बसते,
सकल विश्व के मुमुक्षु जन के शिखामणि तुम हो लसते।
त्रिभुवन के सब भव्य कुमुद ये खिलते तुम पूरण शशि हो,
गोमटेश तुम नमन तुम्हें हो सदा चाह बस मन वशि हो।।४।।
मृदुतम बेल लताएँ लिपटीं पग से उर तक तुम तन में,
कल्पवृक्ष हो अनल्प फल दो भवि-जन को तुम त्रिभुवन में।
तुम पद पंकज में अलि बन सुर-पति गण करता गुन-गुन है,
गोमटेश प्रभु के प्रति प्रतिपल वन्दन अर्पित तन-मन है।।५।।
अम्बर तज अम्बर-तल थित हो दिग अम्बर नहिं भीत रहे,
अम्बर आदिक विषयन से अति विरत रहे भव भीत रहे।
सर्पादिक से घिरे हुए पर अकम्प निश्चल शैल रहे,
गोमटेश स्वीकार नमन हो धुलता मन का मैल रहे।।६।।
आशा तुमको छू नहिं सकती समदर्शन के शासक हो,
जग के विषयन में वांछा नहिं दोष मूल के नाशक हो।
भरत-भ्रात में शल्य नहीं अब विगत राग हो रोष जला,
गोमटेश तुम में मम इस विध सतत राग हो होत चला।।७।।
काम-धाम से धन कंचन से सकल संग से दूर हुए,
शूर हुए मद मोह-मार कर समता से भरपूर हुए।
एक वर्ष तक एक थान थित निराहार उपवास किए,
इसीलिए बस गोमटेश जिन मम मन में अब वास किए।।८।।

दोहा

नेमीचन्द्र गुरु ने किया प्राकृत में गुणगान।
गोमटेश थुति अब किया भाषा-मय सुख खान।।१।।
गोमटेश के चरण में नत हो बारम्बार।
विद्यासागर कब बनूँ भवसागर कर पार।।२।।

कुछ नया ना,
नए तरीके से हो,
आनन्द मिले ।

जो जैसा मिला,
स्वीकारो समता से,
भला ही होगा ।

भजन .....

काया की काठी, आत्मा का घोड़ा
आत्मा पे मारा जो ज्ञान का हथौड़ा
दौड़ा-दौड़ा, दौड़ा-दौड़ा मुनि शरण में दौड़ा
गुरुवर-गुरुवर, गुरुवर-गुरुवर

मिले गुरु ज्ञानी बोले मृदु वाणी
सत्य अहिंसा पालन कर, जीवों पर तू दया कर
सत्यम्-सत्यम्, सत्यम्-सत्यम्
काया की काठी.....।।

प्रभु देना शक्ति, करूँ तुम्हारी भक्ति
जिनमंदिर में जाऊँगा, प्रभु को शीश झुकाऊँगा
अरिहंत-अरिहंत, अरिहंत-अरिहंत
अरिहंत बोलो आत्मा, सिद्ध बोलो आत्मा
काया की काठी.....।।

मुँह से निकले शब्द

एक किसान अपने पड़ोसी की बहुत निन्दा करता था, किन्तु जब उसे अपनी गलती का एहसास हुआ तो वह अपने गुरु के पास प्रायश्चित्त हेतु गया। तब वहाँ गुरु ने उससे कहा कि वह पंखों से भरा एक थैला शहर के बीच रास्ते में बिखेर दे। यह सुनकर किसान ने वैसा ही किया। बाद में वह गुरु के पास आ गया, गुरु ने कुछ समय बाद कहा कि वे सभी पंख थैले में रखकर ले आओ।

इस पर किसान ने ऐसा करने की बहुत कोशिश की, मगर सारे पंख हवा से इधर-उधर उड़ चुके थे। जब वह खाली थैला लेकर आया और सही घटना बताई तो गुरु ने कहा कि यही बात हमारे जीवन पर भी लागू होती है। तुमने बात तो आसानी से कह दी किन्तु उसे वापस नहीं ले सकते, इसलिए शब्दों के चुनाव में सर्वाधिक सावधानी रखनी चाहिए।

अभ्यास

अ. प्रश्नों के उत्तर लिखें-

१. परमेष्ठी किसे कहते हैं? उनके नाम बताएं।
२. जिन चैत्य-चैत्यालय का स्वरूप क्या है?
३. पिता और बेटी मुनिराज के पास क्यों गए ?
४. णमोकार मंत्र को प्रथम बार किसने, कब लिखा ?
५. प्राणि स्वातंत्र्य किसे कहते हैं?
६. जैन धर्म एवं हिन्दु धर्म में कोई चार अंतर बताइए?
७. शिवभूति मुनिराज को केवलज्ञान कैसे हुआ?
८. ७वें, १० वें, १३ वें एवं १५वें तीर्थङ्कर का नाम व चिन्ह क्या है?
९. प्रथमानुयोग पढ़ने से क्या-क्या लाभ हैं?
१०. देवगढ़ तीर्थ कहाँ पर है उसकी कुछ विशेषताएँ बतायें।

ब. पक्तियों को पूर्ण लिखें-

१. अज्ञानता ---------- दिखा दो।
२. तन मन में ---------- पराई है।
३. रिपु चार मेरे ---------- ठानी।
४. जय-जय-जय जिनधर्म -------- भगा दिया।
५. निर्मलं---------- विनाशकं।
६. भविजन ---------- करो मेरे।
७. आप ---------- ना कोय ।
८. त्रिभुवन के ---------- मन वशि हो।
९. महाश्रमण ---------- जिनवरं।
१०. ज्ञान ध्यान---------- सुन्दरं।
११. चिदानन्दैक ---------- नमः।
१२. णिभरं ---------- मग्गया।

स. परिभाषाएँ लिखें-

१. साधु परमेष्ठी २. देव दर्शन ३. उपांशु ४. अहिंसा ५. स्याद्वाद ६. द्रव्यानुयोग

द. श्लोकों का अर्थ लिखिए-

१. एकान्तवादमतहरं, सुस्याद्वादकौशलं।
मुनीन्द्र-वृन्दसेवितं, नमामि शान्ति जिनवरम्।।
२. अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर!।।
३.मणु-यणा-इंद सुर धरिय छत्तत्तया,
पंच-कल्लाण सोक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं,
ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं॥

अन्यत्र ग्रन्थों से खोजें, ज्ञान बढ़ाएँ, पढ़ें और पढ़ाएँ।

१. अरिहन्त भगवान का शरीर कैसा होता है?
२. सिद्ध भगवान कहाँ रहते हैं?
३. चत्तारि पाठ का उच्चारण कैसा है? उसमें आचार्य उपाध्याय का नाम क्यों नहीं लिया?
४. णमोकार मंत्र में प्रत्येक पद में अक्षर, मात्राएँ कितनी हैं? उन्हें कैसे गिना जाता है?
५. मंगल किसे कहते हैं? उनके अन्य पर्यायवाची नाम कौन से हैं?
६. णमोकार मंत्र को प्रयोगशाला में किस तरह श्रेष्ठ सिद्ध किया गया?
७. जीवन्धर कुमार, पद्मरुचि सेठ एवं अंजन चोर की कथा कैसी है?
८. मानस्तंभ किसे कहते हैं ? उसकी क्या उपयोगिता है?
९. तीर्थङ्करों के पंचकल्याणक कैसे मनाये जाते हैं?
१०. विदेह क्षेत्र के तीर्थङ्करों की विशेषताएँ बताइए।
११. अ, प, श, स अक्षर से प्रारंभ होने वाले तीर्थङ्करों के नाम लिखें।
१२. एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय चिह्न वाले तीर्थङ्करों के नाम लिखें।
१३. तीर्थङ्कर प्रभु का समवशरण कैसा होता है? उसकी विशेषताएँ बताएँ?

'' 'ही' एकान्तवाद का समर्थक है
'भी' अनेकान्त, स्याद्वाद का प्रतीक।
हम ही सब कुछ हैं
यूँ कहता है 'ही' सदा,
तुम तो तुच्छ, कुछ नहीं हो!
और,
'भी' का कहना है कि
हम भी हैं
तुम भी हो
सब कुछ !'' (पृ. १७२)

''कर्त्तृत्व-बुद्धि से
मुड़ गया है वह
और
कर्तव्य-बुद्धि से
जुड़ गया है वह।''
''मुड़न-जुड़न की यह क्रिया
कार्य की निष्पत्ति तक
अनिवार्य है। ''(पृ. २८-२९)